(2008) 17 एस सी सी 1476

रूप सिंह नेगी

बनाम

पंजाब नेशनल बैंक एवं अन्य।

सिविल अपील सं. 7431/2008

19 दिसम्बर 2008

(जस्टिस एसबी सिन्हा एवं जस्टिस साईरिक जोसेफ)

सेवा कानून- अनुशासनात्मक कार्यवाही- बैंक- रिक्त ड्राफ्ट इश्यु बुक की चोरी- अपीलार्थी, एक बैंक कर्मचारी अभियुक्तो में से एक- जांच अधिकारी ने अपीलार्थी को दोषी पाया, उसके द्वारा पुलिस अधिकारी के समक्ष की गई कथित स्वीकारोक्ति पर भरोसा करते हुए- अनुशासनिक प्राधिकारी ने बिना अपीलार्थी द्वारा उठाई गई दलीलो पर विचार किये कि इस बीच में आपराधिक न्यायालय द्वारा आरोप मुक्त कर दिया गया था अपीलार्थी को बर्खास्त करने का निर्देश दिया गया- अभिनिर्धारितः जांच अधिकारी एक अर्धन्यायिक कार्यकर्ता है, और उसका कर्तव्य है कि वह पक्षकार द्वारा लाई गई सामग्री को ध्यान में रखते हुए किसी निष्कर्ष पर पहुंचे- अभिलेख के तथ्यों पर केवल बुनियादी साक्ष्य जिस पर जांच अधिकारी द्वारा कथित रूप से निर्भरता रखी गई है, पुलिस के सामने अपीलार्थी द्वारा किया गया

इकबालिया बयान था - उक्त स्वीकारोक्ति साबित होनी चाहिए थी- कोई साक्ष्य नहीं, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से, अभिलेख पर यह दिखाने के लिए कि अपीलार्थी बैंक ड्राफ्ट चुराने में लिप्त था- इसके अलावा, जांच अधिकारी और अपीलीय अधिकारी का आदेश किसी भी कारण से समर्थित नहीं था- यदि जांच अधिकारी द्वारा अपीलार्थी द्वारा की गई स्वीकारोक्ति पर भरोसा किया गया था तो इसका कोई कारण नहीं था कि आपराधिक न्यायालय द्वारा पारित आरोप मुक्त करने के आदेश पर विचार क्यों नहीं किया जाना चाहिए था, जो उसी साक्ष्य पर आधारित है- साक्ष्य अधिनियम के प्रावधान विभागीय कार्यवाही में लागु नहीं हो सकते है, परन्तु प्राकृतिक न्याय के सिद्धान्त लागु होते है- चूंकि पूछताछ अधिकारी की रिपोर्ट केवल अप्रमाणित कथन पर आधारित थी और साथ ही अनुमानो और अटकलो पर, इसलिए इसे कायम नहीं रखा जा सकता है- अपीलार्थी को तदनुसार पुरे बकाया वेतन के साथ पुनः बहाल करने का निर्देश दिया गया- प्राकृतिक न्याय का सिद्धान्त- मस्तिष्क के प्रयोग करने की आवश्यकता।

अपीलार्थी, एक बैंक कर्मचारी कथित रूप से शामिल था, एक खाली ड्राफ्ट इश्यु बुक की चोरी मे। घटना के पांच साल बाद उसके खिलाफ अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई थी। जांच अधिकारी ने अपीलार्थी को दोषी पाया उसके द्वारा घटना के संबंध में पुलिस के समक्ष की गई कथित स्वीकारोक्ति के आधार पर अनुशासनिक प्राधिकारी ने बिना कोई कारण बताये और अपीलार्थी द्वारा उठाये गये तर्कों पर विचार किये बिना जिसमें

यह तर्क भी था कि इस बीच में उसे आपराधिक न्यायालय द्वारा आरोप मुक्त कर दिया गया था, अपीलार्थी को सेवा से बर्खास्त किया जाने का निर्देश दिया गया। अपीलार्थी द्वारा अपीलीय प्राधिकरण के समक्ष किये गये अभ्यादेन को खारिज कर दिया गया था। तत्पश्चात् अपीलार्थी ने रिट याचिका दायर की जिसे उच्च न्यायालय ने खारिज कर दिया। इसलिए

वर्तमान अपील अपील को अनुमति देते हुए न्यायालय ने अभिनिर्धारित कियाः

1.1 एक विभागीय कार्यवाही एक अर्धन्यायिक कार्यवाही है। जांच अधिकारी एक अर्ध न्यायिक कार्य करता है। दोषी अधिकारी पर लगाए गए आरोप सिद्ध होने चाहिए। जांच अधिकारी का कर्तव्य है कि वह पार्टियों द्वारा रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्रियों पर विचार करके किसी निष्कर्ष पर पहुंचे। जांच अधिकारी द्वारा सभी आरोपियों के खिलाफ जांच के दौरान एकत्र किए गए कथित साक्ष्य को अनुशासनात्मक कार्यवाही में साक्ष्य नहीं माना जा सकता है। उक्त दस्तावेजों को साबित करने के लिए किसी गवाह को परीक्षित नहीं कराया गया। प्रबंधन के गवाहों ने केवल दस्तावेज प्रस्तुत किए और उनकी सामग्री को साबित नहीं किया। अन्य बातों के अलावा, जांच अधिकारी द्वारा एफआईआर पर भरोसा किया गया था जिसे सबूत के रूप में नहीं माना जा सकता था। जांच अधिकारी द्वारा जिस एकमात्र बुनियादी सबूत पर भरोसा किया गया है वह पुलिस के समक्ष अपीलकर्ता द्वारा किया गया कथित स्वीकारोक्ति था। अपीलकर्ता के अनुसार, उसे उक्त

स्वीकारोक्ति पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया गया था, क्योंकि उसे पुलिस स्टेशन में प्रताड़ित किया गया था। अपीलकर्ता बैंक का कर्मचारी होने के नाते, उक्त स्वीकारोक्ति साबित होनी चाहिए थी। यह दिखाने के लिए कुछ सबूत रिकॉर्ड में लाए जाने चाहिए थे कि वह बैंक ड्राफ्ट बुक चुराने में शामिल था। स्वीकृत रूप से कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं था। यहां तक कि कोई अप्रत्यक्ष सबूत भी नहीं था। रिपोर्ट का सार दर्शाता है कि जांच अधिकारी ने उसे दोषी ठहराने का मन बना लिया था अन्यथा वह इस आधार पर आगे नहीं बढ़ता क्योंकि अपराध इस तरह से किया गया था कि कोई सबूत नहीं छोड़ा गया था। (पैरा 10) (1485 जी- एच; 1486 ए- ई)

1.2 अनुशासनात्मक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी का आदेश किसी भी कारण से समर्थित नहीं है। चूंकि उनके द्वारा पारित आदेशों के गंभीर नागरिक परिणाम होंगे, इसलिए उचित कारण बताए जाने चाहिए। यदि जांच अधिकारी ने अपीलकर्ता द्वारा की गई स्वीकारोक्ति पर भरोसा किया था, तो कोई कारण नहीं था कि एकसमान साक्ष्य के आधार पर आपराधिक न्यायालय द्वारा पारित आरोप मुक्त करने के आदेश पर विचार क्यों नहीं किया जाना चाहिए था। अपराध की ओर इशारा करने वाली रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री को साबित करना आवश्यक है। निर्णय कुछ सबूतों के आधार पर लिया जाना चाहिए, जो कानूनी रूप से स्वीकार्य हो। साक्ष्य अधिनियम के प्रावधान विभागीय कार्यवाही में लागू नहीं हो सकते हैं लेकिन प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत लागू होते हैं। चूंकि जांच अधिकारी की

रिपोर्ट केवल अप्रमाणित कथन और साथ ही अनुमानों और अटकलों पर आधारित थी, इसलिए इसे कायम नहीं रखा जा सकता था। जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष स्पष्ट रूप से किसी भी साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं थे। जैसा कि सर्वविदित है, संदेह कितना भी अधिक क्यों न हो, किसी भी परिस्थिति में कानूनी सबूत का विकल्प नहीं माना जा सकता। अपीलकर्ता को पूर्ण बकाया वेतन के साथ बहाल करने का निर्देश दिया जाता है। (पैरा 17 एंव 18) (1492- सी- एच)

भारत संघ बनाम एचएच गोयल (1964) 4 एससीआर 718; मोनी शंकर बनाम भारत संघ व अन्य (2008) 3 एससीसी 484; नरीन्द्र मोहन आर्य बनाम युनाईटेड इंडिया ईन्सोरेंस कम्पनी लिमिटेड एवं अन्य (2006) 4 एससीसी 713; एमवी बिजलानी बनाम भारत संघ व अन्य (2006) 5 एससीसी 88 और जसबीर सिंह बनाम पंजाब एवं सिंध बैक एवं अन्य (2007) 1 एससीसी 566 पर भरोसा किया गया।

कुलदीप सिंह बनाम पुलिस आयुक्त एंव अन्य { (1999) 2 एससीसी 10}; भगवती प्रसाद दुबे बनाम भारतीय खाद्य निगम (एआईआर 1988 एससी 434) और कैप्टन एम पॉल एन्थनी बनाम भारत गोल्ड माईन्स लिमिटेड (1999) 3 एससीसी 679, संदर्भित किया गया।

संदर्भित कानूनी मामले

(1999) 2 एससीसी 10	संदर्भित किया गया	पैरा 9

(एआईआर 1988 एससी 434)	संदर्भित किया गया	पैरा 9
(2006) 4 एससीसी 713	भरोसा किया गया	पैरा 9
(1964) 4 एससीआर 718	भरोसा किया गया	पैरा 11
(2008) 3 एससीसी 484	भरोसा किया गया	पैरा 12
(1999) 3 एससीसी 679	संदर्भित किया गया	पैरा 13
(2006) 5 एससीसी 88	भरोसा किया गया	पैरा 15
(2007) 1 एससीसी 566	भरोसा किया गया	पैरा 16

सिविल अपील क्षेत्राधिकार: सिविल अपील नम्बर 7431/2008

हिमाचल प्रदेश उच्च न्यायालय शिमला के सिविल रिट पीटिशन नम्बर 725/2001 में पारित निर्णय व आदेश दिनांक 20.04.2007 से।

के.के. राय, एस के पाण्डे, ए.पी.एस. रावत, सुभाष ओबरोय, सी.एम. गोपॉल एव के.वी. मोहन .... अपीलार्थी की ओर से।

ध्रुव मेहता, हर्षवर्धन झां, यशराज सिंह देवड़ा एवं टी.एस. सतारिश (मेसर्स के.एल. मेहता एवं कम्पनी)...................... रेस्पोंडेंट की ओर से।

न्यायालय का निर्णय जस्टिस एसपी सिन्हा द्वारा दिया गया।

1. अनुमति प्रदान की गई।

2. अपीलकर्ता, प्रत्यर्थी- बैंक में चपरासी के रूप में कार्यरत था। 24.11.1993 को, बैंक के प्रबंधक द्वारा एक शिकायत दर्ज की गई थी

जिसमें आरोप लगाया गया था कि कुछ ड्राफ्ट जो मेसर्स अनिल ट्रेडर और कुछ अन्य व्यक्तियों द्वारा नकदीकरण के लिए प्रस्तुत किए गए थे और कथित तौर पर बैंक की माल रोड शाखा से जारी किए गए थे, वास्तव में वहां से जारी नहीं किया गया था।

भारतीय दंड संहिता की धारा 380/120बी के तहत एक प्रथम सूचना रिपोर्ट (संक्षेप में, ''एफआईआर'') दर्ज की गई थी। उक्त मामले की जांच श्री जनार्दन सिंह, वरिष्ठ निरीक्षक को सौंपी गई थी। उन्होंने अन्य बातों के साथ- साथ 11.12.1993 को एक रिपोर्ट प्रस्तुत की, जिसमें कहा गया कि अपीलकर्ता की सत्यनिष्ठा, जिसे रामपुर, शिमला स्थानांतरित कर दिया गया था, संदिग्ध थी। यह निष्कर्ष निकाला गयाः

> ''उपरोक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए हमारा मानना है कि दोनों संयुक्त संरक्षक यानी श्री एचसी ग्रोवर- प्रबंधक, वर्तमान में बीओ चांदनी चैक, दिल्ली में तैनात और श्री पीसी गुप्ता- एएम ड्राइंग बुक के नुकसान के लिए जिम्मेदार हैं जो दोनों 1.6.93 से 24.8.93 तक संरक्षकों में से एक रहे। यदि उन्होंने उचित देखभाल व सावधानी बरती होती तो ड्राइंग बुक के नुकसान से बचा जा सकता था।
>
> इसके अलावा, श्री शरद नारायण, वरिष्ठ प्रबंधक भी जिम्मेदार हैं क्योंकि वह सुरक्षा प्रपत्रों की मासिक जांच के

संबंध में निर्धारित निर्देशों का अनुपॉलन सुनिश्चित करने में विफल रहे हैं और 31.5.93 के बाद एमसी जमा न करने के लिए भी जिम्मेदार हैं।"

उक्त रिपोर्ट में बैंक के कुछ अधिकारियों की ओर से विभिन्न प्रक्रियात्मक खामियों की ओर भी इशारा किया गया था।

3. उक्त घटना के पांच साल बाद, अपीलकर्ता के खिलाफ एक अनुशासनात्मक कार्यवाही शुरू की गई जिसमें कहा गया कि 18.11.1991 और 9.10.1993 की अवधि के दौरान, उसने एक खाली ड्राफ्ट इश्यू बुक नंबर 626401 से 626425 ले गया था। एक कारण दर्शाओ नोटिस जारी किया गया। कारण उसके द्वारा बताया गया था। जांच अधिकारी ने उसे दोषी पाया। उक्त कार्यवाही में, वर्ष 1993 में पुलिस अधिकारियों के समक्ष अपीलकर्ता के कथित स्वीकारोक्ति पर भरोसा किया गया था। इसे प्रदर्श पीई- 3 के रूप में चिह्नित किया गया था।

4. निस्संदेह, बैंक से संबंधित प्रपत्र और अन्य महत्वपूर्ण पुस्तकें और दस्तावेज कभी भी एक चपरासी की अभिरक्षा में नहीं रहते हैं। यह स्वीकार किया गया कि पुलिस अधिकारियों द्वारा दस्तावेजी साक्ष्य एकत्र किये गये थे। उन दस्तावेजो को केवल प्रस्तुत किया गया था, वे साबित नहीं हुए थे। अपीलकर्ता द्वारा कथित स्वीकारोक्ति भी साबित नहीं हुई। केवल इसलिए कि उक्त स्वीकारोक्ति पुलिस अधिकारियों के समक्ष की गई थी,

जांच अधिकारी ने उसके आधार पर अनुमान लगाया कि अपीलकर्ता का उन व्यक्तियों के साथ संबंध था जिन्होंने उन बैंक ड्राफ्ट का उपयोग किया था, यह कहते हुएः

> ‘‘....इसलिए, अधोहस्ताक्षरी की राय है कि पीई- 4 यह साबित करता है कि श्री रूप सिंह नेगी के उक्त दोषियों के साथ संबंध हैं। दिनांक 20.07.1999 को गवाह एमडीडब्ल्यू- 1 की जांच पर उन्होंने कहा है कि श्री रूप सिंह नेगी के बयान के अनुसार, उसने कबूल किया है कि राजबीर, देविंदर उर्फ मेंटल, आसिफ और ब्रह्मपॉल, जो ट्रांस- यमुना क्षेत्र के निवासी हैं, के निर्देश/कहने पर उसने ड्राफ्ट बुक चुरा ली थी...‘‘

अन्य बातों के साथ- साथ यह निष्कर्ष निकाला गयाः

> ‘‘उपरोक्त विवरण/कार्यवाही के मद्देनजर यह साबित हो गया है कि दोषी कर्मचारी ने स्वीकार किया है कि ड्राफ्ट संख्या फॅा- 626401 से 626425 पृष्ठ संख्या 25057 के अनुसार शाखा कार्यालय माल रोड दिल्ली शाखा से चोरी हो गए हैं और इससे बैंक को वित्तीय नुकसान हुआ है, लेकिन उसने यह स्वीकार नहीं किया है कि उसने उक्त ड्राफ्ट चुराए हैं।

> चूंकि दोषी कर्मचारी पर मुख्य आरोप ड्राफ्ट बुक और अन्य दस्तावेजों को चुराने का है, इसलिए ऐसे मामलों में आम तौर पर प्रत्यक्ष सबूत/साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते हैं और निष्कर्ष धारणाओं के आधार पर निकाला गया है..''

पुलिस द्वारा उपलब्ध कराए गए दस्तावेजों के आधार पर कुछ तथ्यात्मक आधार का अनुमान लगाया गया था जैसा कि जांच अधिकारी के निम्नलिखित निष्कर्षों से प्रकट होता है।

> ''1. गुमशुदा ड्राफ्ट बुक नंबर 626404 दिनांक 6.9.93 के माध्यम से 6,90,000/- रुपये का फर्जी ड्राफ्ट पीएनबी शाखा फरुखाबाद के माध्यम से तैयार किया गया स्वयं ओबीसी फरुखाबाद के माध्यम से भुनाया गया और फिर से ओबीसी दिल्ली पर ड्राफ्ट तैयार किया गया और सी.बी.आई. नारायण शाखा के माध्यम से भुनाया गया।
>
> 2. इस ड्राफ्ट नं. 626402 दिनांक 24.8.93 रू. 5,40,000/- को मेसर्स अजय सेल्स के नाम पर बनाया गया और फरुखाबाद शाखा से भुनाया गया।
>
> 3. पन्नों से ड्राफ्ट नं. 626415 दिनांक 27.9.93 रू. 7,35,000/- एवं ड्राफ्ट नं. 626423 दिनांक 1.10.95 रु.

8,65,000/- शाखा सहारनपुर से तैयार किए गए और शाखा खालसी लाइन्स सहारनपुर से भुनाए गए।

4. केके गुप्ता, राजबीर, अशोक कुमार, रविंदर पॉल सिंह, कांटे गुप्ता और हरविंदर उर्फ बिल्ला नामक दोषियों को ठाणे मैसूरी (गाजियाबाद) पुलिस द्वारा ड्राफ्ट बुक के शेष पन्नों के साथ गिरफ्तार किया जाना।

5. ड्राफ्ट बुक नंबर, 626401 से 626425 और अन्य दस्तावेज शाखा मॉल रोड दिल्ली से चुराना।

6. चोरी हुई ड्राफ्ट बुक से पहला ड्राफ्ट 24.8.93 को जारी किया गया था, जिसकी जानकारी सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया शाखा अधिकारी से माल रोड दिल्ली शाखा को होना।

7. 9.10.1993 से पहले श्री रूप सिंह नेगी माल रोड दिल्ली शाखा में तैनात थे।

8. बैंक सुरक्षा फॉर्म विभाग गैर- बैंक कर्मचारियों/बाहरी लोगों की पहुंच से बाहर है।"

ऐसा माना जाता है कि यह पाया गया थाः

"1. ड्राइंग बुक और अधिकारियों के नमूना हस्ताक्षर की चोरी 24.8.93 से पहले हुई।

2. ड्राफ्ट चोरी होने का तथ्य 24.11.93 को पता चला जबकि ऐसा 24.8.93 को किया गया था। सुरक्षा प्रपत्र विभाग से ड्राफ्ट बुक इस तरह से चोरी हुए जिसकी जानकारी काफी देर से हुई। संभवतः यह प्रारूप पुस्तक अंतिम क्रमांक पर उपलब्ध मसौदा पुस्तकों का हटा ली गई है।

3. पूरे गबन से यह स्पष्ट है कि गिरोह को बैंकिंग कार्यप्रणाली की पूरी जानकारी थी या कोई कर्मचारी इस गबन/धोखाधड़ी में शामिल था।

4. वह धोखाधड़ी इतनी चतुराई से की गई है कि इसका कोई प्रत्यक्ष सबूत या साक्ष्य उपलब्ध नहीं है।"

जांच अधिकारी द्वारा उपरोक्त तथ्यों के आधार पर निम्नानुसार निष्कर्ष निकाला गयाः

"श्री रूप सिंह का उन अपराधियों के साथ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष संबंध है जिन्हें ड्राफ्ट के पन्नों के साथ थाना मैसूरी (गाजियाबाद) द्वारा गिरफ्तार किया गया था और जिनके बयान के आधार पर श्री रूप सिंह नेगी को दिल्ली पुलिस ने 9.12.93 को रामपुर बुशहर हिमाचल प्रदेश से गिरफ्तार किया था और दिल्ली ले जाया गया। उपरोक्त

> अभियुक्तों के साथ संबंध होने से यह साबित होता है कि श्री रूप सिंह नेगी ने सिक्योरिटी फॉर्म विभाग से ड्राफ्ट बुक संख्या 626401 से 626425 चुराई।"

5. अनुशासनात्मक प्राधिकारी के समक्ष अपीलकर्ता ने तर्क दिया कि उसके खिलाफ कोई सबूत नहीं है। अनुशासनात्मक प्राधिकारी का ध्यान इस तथ्य की ओर भी आकर्षित किया गया कि 9.5.2000 के एक आदेश द्वारा, आपराधिक न्यायालय ने उसे आरोप मुक्त करने का आदेश पारित किया। राजबीर नामक व्यक्ति के खिलाफ केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 411 के तहत आरोप तय किए गए थे।

न तो राज्य और न ही बैंक ने इसके विरुद्ध कोई पुनरीक्षण याचिका दायर की। उसी ने अंतिमता प्राप्त की। क्षेत्रीय प्रबंधक ने अनुशासनात्मक प्राधिकारी के रूप में कार्य करते हुए दिनांक 24.1.2001 के एक आदेश द्वारा बिना कोई कारण बताए और अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए तर्कों पर विचार किए बिना, जिसमें यह तथ्य भी शामिल है कि उसे आपराधिक अदालत द्वारा आरोप मुक्त कर दिया गया था, अपीलकर्ता को सेवाओं से बर्खास्त करने का निर्देश दिया, यह बताते हुएः

> "मैंने फिर से तथ्यों को ध्यान से पढ़ा है और मैं आपको द्विपक्षीय निपटान खंड 19.5 (समय- समय पर संशोधित) के संदर्भ में घोर कदाचार के लिए जिम्मेदार मानता हूं और

प्रस्तावित सजा को कम करने का कोई औचित्य नहीं है। इसलिए, द्विपक्षीय समझौते के संदर्भ में निपटान खंड 19.6, मैं प्रस्तावित दंड ‘‘बैंक सेवा से बर्खास्तगी‘‘ की पुष्टि करता हूं। चूंकि आप निलंबित हैं, इसलिए, मैं आदेश देता हूं कि द्विपक्षीय निपटान प्रावधानों के संदर्भ में आप केवल बैंक सेवा से बर्खास्तगी तक जीवन निर्वाह भत्ते के पात्र होंगे।"

6. अपीलार्थी ने उक्त आदेश के विरुद्ध अपीलीय प्राधिकारी के समक्ष अभ्यावेदन दिया। अपीलीय प्राधिकारी उसकी दलीलों पर विस्तार से गौर करता है। अन्य बातों के अलावा, इस आधार पर कि अपीलकर्ता को व्यक्तिगत सुनवाई का अवसर दिया गया था, अपील खारिज कर दी गई, यह कहते हुएः

‘‘उपरोक्त के मद्देनजर, अपीलकर्ता द्वारा दिनांक 23.02.2001 को अपनी अपील में की गई दलीलें और व्यक्तिगत सुनवाई के दौरान की गई उसकी मौखिक दलीलें गुणों से रहित हैं। ऐसे में मुझे अनुशासनात्मक प्राधिकारी के आदेश में हस्तक्षेप करने या बदलने का कोई कारण नहीं मिलता है।

इस प्रकार सिद्ध आरोपों की प्रकृति और गंभीरता को ध्यान में रखते हुए, अनुशासनात्मक प्राधिकारी द्वारा अपने आदेश दिनांक 24.01.2001 द्वारा श्री नेगी पर लगाई गई ‘‘बैंक

सेवा से बर्खास्तगी" की सजा की पुष्टि की जाती है और श्री नेगी की अपील खारिज कर दी जाती है।"

7. अपीलीय प्राधिकारी ने भी अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए तर्कों पर अपना दिमाग नहीं लगाया और अपने निष्कर्ष के समर्थन में कोई कारण नहीं दिया गया।

किस साक्ष्य के आधार पर अपीलकर्ता को दोषी पाया गया, यह नहीं बताया गया।

8. उक्त आदेशों से व्यथित और असंतुष्ट होकर, अपीलकर्ता ने एक रिट याचिका दायर की। जो प्रश्नगत आदेश द्वारा यह कहते हुए खारिज कर दी गई:

"...इस न्यायालय द्वारा रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग केवल उन असाधारण परिस्थितियों में किया जा सकता है जिनका याचिकाकर्ता ने याचिका में उल्लेख नहीं किया है। हालांकि, एक बार याचिका को सुनवाई के लिए स्वीकार कर लिया गया था इतने समय के अंतराल के बाद रिट क्षेत्राधिकार का प्रयोग करते हुए वर्ष 2001 में रिट याचिका स्वीकार किए जाने के वर्षों के बाद, इस न्यायालय के लिए अब यह आदेश पारित करना उचित नहीं होगा कि याचिकाकर्ता को औद्योगिक न्यायाधिकरण के संदर्भ में एक मामला बनाना

चाहिए और इसलिए याचिकाकर्ता द्वारा दायर याचिका पर विचार किया जा रहा है।“

9. उच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के फैसले कुलदीप सिंह बनाम पुलिस आयुक्त एवं अन्य (1999) 2 एससीसी 10, नरिंदर मोहन आर्य बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य (2006) 4 एससीसी 713, और भगवती प्रसाद दुबे बनाम भारतीय खाद्य निगम (एआईआर 1988 एससी 434) पर गौर किया गया। जिस पर अपीलकर्ता की ओर से उपस्थित विद्वान वकील ने भरोसा जताया है, और अभिनिर्धारित किया: -

"उपरोक्त सभी निर्णय सीधे तौर पर वर्तमान तथ्यों से आकर्षित नहीं होते हैं, हालांकि निर्धारित कानून वर्तमान तथ्यों पर लागू होता है। लेकिन मामले के तथ्यों में यह बिना किसी सबूत का मामला नहीं है, बल्कि केवल साक्ष्य के आधार पर निकाले गए निष्कर्षों के संबंध में है जिनका पुनर्मूल्यांकन इस न्यायालय द्वारा नहीं किया जा सकता।

इस तर्क पर आते हुए कि एक बार जांच अधिकारी द्वारा सबूतों पर विचार करने के बाद निष्कर्ष दिए जाने के बाद इस न्यायालय द्वारा सबूतों का कोई पुनर्मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है, यह याचिकाकर्ता का मामला नहीं है कि उसके

खिलाफ कोई सबूत नहीं था जैसा कि जांच अधिकारी के समक्ष दिया गया था, लेकिन विवाद सबूतों के आधार पर जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष के संबंध में है। कानून के अनुसार भले ही जांच रिपोर्ट के आधार पर याचिकाकर्ता के खिलाफ दो राय निकालना संभव हो, लेकिन जांच अधिकारी द्वारा निकाली गई एक राय को इस आधार पर गलत नहीं माना जा सकता कि दूसरा नजरिया भी साक्ष्य के आधार पर निकाला जाना संभव था।

नरेंद्र मोहन आर्य के उपरोक्त मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि विभागीय जांच रिपोर्ट की कार्यवाही अर्ध आपराधिक प्रकृति की है। इसलिए दोषी अधिकारी के अपराध को किसी आपराधिक मामले की तरह किसी भी उचित संदेह से परे साबित करने की आवश्यकता नहीं है।

हमने जांच अधिकारी की रिपोर्ट पर विचार किया है और बैंक द्वारा लगाया गया जुर्माना सबूतों पर आधारित है, इसलिए यह न्यायालय इस पर विचार करने के लिए खुला नहीं है कि कोई अन्य दृष्टिकोण भी संभव था और चूंकि यह कोई सबूत नहीं होने का मामला नहीं था, इसलिए वहां

साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है या साक्ष्य के आधार पर इस न्यायालय द्वारा अपना निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता है। जांच अधिकारी द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष और रेस्पोंडेन्ट बैंक या उसके अधिकारियों द्वारा दी गई सजा में इस अदालत द्वारा किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है और इस तरह याचिका में कोई सार नहीं है जिसे तदनुसार खारिज कर दिया जाता है।"

10. निर्विवाद रूप से, एक विभागीय कार्यवाही एक अर्धन्यायिक कार्यवाही है। जांच अधिकारी एक अर्ध न्यायिक कार्य करता है। दोषी अधिकारी पर लगाए गए आरोप सिद्ध होने चाहिए। जांच अधिकारी का कर्तव्य है कि वह पक्षकारों द्वारा रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्रियों पर विचार करके किसी निष्कर्ष पर पहुंचे। जांच अधिकारी द्वारा सभी आरोपियों के खिलाफ जांच के दौरान एकत्र किए गए कथित साक्ष्य को अनुशासनात्मक कार्यवाही में साक्ष्य नहीं माना जा सकता है। उक्त दस्तावेजों को साबित करने के लिए किसी गवाह को परीक्षित नहीं कराया गया। प्रबंधन के गवाहों ने केवल दस्तावेज प्रस्तुत किए और उनकी सामग्री को साबित नहीं किया। अन्य बातों के अलावा, जांच अधिकारी द्वारा एफआईआर पर भरोसा किया गया था जिसे सबूत के रूप में नहीं माना जा सकता था। जांच अधिकारी द्वारा जिस एकमात्र बुनियादी सबूत पर भरोसा किया गया है वह पुलिस के समक्ष अपीलकर्ता द्वारा किया गया कथित स्वीकारोक्ति था।

अपीलकर्ता के अनुसार, उसे उक्त स्वीकारोक्ति पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया गया था, क्योंकि उसे पुलिस स्टेशन में प्रताड़ित किया गया था। अपीलकर्ता बैंक का कर्मचारी होने के नाते, उक्त स्वीकारोक्ति साबित होनी चाहिए थी। यह दिखाने के लिए कुछ सबूत रिकॉर्ड में लाए जाने चाहिए थे कि वह बैंक ड्राफ्ट बुक चुराने में शामिल था। स्वीकृत रूप से कोई प्रत्यक्ष साक्ष्य नहीं था। यहां तक कि कोई अप्रत्यक्ष सबूत भी नहीं था. रिपोर्ट का सार दर्शाता है कि जांच अधिकारी ने उसे दोषी ठहराने का मन बना लिया था अन्यथा वह इस आधार पर आगे नहीं बढ़ता कि अपराध इस तरह से किया गया था कि कोई सबूत नहीं छोड़ा गया था।

11. भारत संघ बनाम एचएस गोयल (1964) 4 एससीआर 718 में, यह अभिनिर्धारित किया गया थाः

> “...दोनों कमजोरियाँ अलग और भिन्न- भिन्न हैं, हालाँकि, कुछ मामलों में, दोनों मौजूद हो सकते हैं। ऐसे मामले भी हो सकते हैं जिनमें कोई सबूत न हो, भले ही सरकार नेकनीयती से काम कर रही होः उक्त दुर्बलता वहां भी मौजूद हो सकती है जहां सरकार दुर्भावना से काम कर रही है और उस स्थिति में, किसी भी साक्ष्य द्वारा समर्थित न होने वाला सरकार का निष्कर्ष दुर्भावना का परिणाम हो सकता है, लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि अगर यह साबित हो

जाता है कि कोई सबूत नहीं है, सरकार के निष्कर्ष का समर्थन करने के लिए, दुर्भावना के अतिरिक्त सबूत के बिना उत्प्रेषण रिट जारी नहीं की जाएगी। इसीलिए हम विद्वान अटॉर्नी- जनरल के इस तर्क को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं कि चूंकि वर्तमान मामले में अपीलकर्ता के खिलाफ कोई दुर्भावनापूर्ण आरोप नहीं लगाया गया है, इसलिए रेस्पोंडेंट के पक्ष में कोई उत्प्रेषण रिट जारी नहीं किया जा सकता है।

यह हमें रेस्पोंडेंट के तर्क की योग्यता पर ले जाता है कि अपीलकर्ता का निष्कर्ष कि रेस्पोंडेंट के खिलाफ लगाया गया तीसरा आरोप साबित हो गया है, बिना किसी सबूत पर आधारित है। विद्वान अटॉर्नी- जनरल ने हमारे सामने इस बात पर जोर दिया है कि इस प्रश्न से निपटने में, हमें इस तथ्य को ध्यान में रखना चाहिए कि अपीलकर्ता भ्रष्टाचार को जड़ से खत्म करने के दृढ़ संकल्प के साथ कार्य कर रहा है, और इसलिए, यदि यह दिखाया जाता है कि उसने जो दृष्टिकोण अपनाया है अपीलकर्ता का एक उचित दृष्टिकोण है, इस न्यायालय को उस निर्णय पर अपील में नहीं बैठना चाहिए और यह तय करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए कि क्या इस न्यायालय ने भी वही दृष्टिकोण अपनाया होगा

या नहीं। निःसंदेह यह मत बिल्कुल सही है। उत्तरदाताओं के मामले के इस भाग से निपटने के लिए एकमात्र परीक्षण जिसे हम वैध रूप से लागू कर सकते हैं, वह यह है कि क्या कोई सबूत है जिसके आधार पर प्रतिवादी के खिलाफ यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आरोप संख्या 3 उसके खिलाफ साबित हुआ था? आर्टिकल 226 के तहत अपने अधिकार क्षेत्र का प्रयोग करने में (ऐसी याचिका पर) उच्च न्यायालय किसी विशेष निष्कर्ष के समर्थन में साक्ष्य की पर्याप्तता या उपयुक्तता के प्रश्न पर विचार नहीं कर सकता है। यह एक ऐसा मामला है जो उस प्राधिकारी की क्षमता के अंतर्गत है जिसने इस प्रश्न पर विचार किया है; लेकिन उच्च न्यायालय यह जांच कर सकता है और अवश्य करना चाहिए कि क्या विवादित निष्कर्ष के समर्थन में कोई सबूत है। दूसरे शब्दों में, यदि जांच में दिए गए सभी साक्ष्यों को सत्य मान लिया जाए, तो क्या यह निष्कर्ष निकलता है कि प्रश्नगत आरोप रेस्पोंडेंट के विरुद्ध सिद्ध हो गए हैं? यह दृष्टिकोण साक्ष्य को तौलने से बचाएगा। यह सबूतों को उसी रूप में लेगा जैसे वह मौजूद है और केवल यह जांच करेगा कि क्या उस सबूत पर कानूनी रूप से विवादित निष्कर्ष का पॉलन होता है या नहीं। इस परीक्षण

को लागू करते हुए, हम यह मानने के इच्छुक हैं कि रेस्पोंडेंट की शिकायत अच्छी तरह से प्रमाणित है क्योंकि, हमारी राय में, रेस्पोंडेंट को बर्खास्त करने वाले अपीलकर्ता के आदेश में जो निष्कर्ष निहित है कि आरोप संख्या 3 उसके खिलाफ साबित हुआ है, वह बिना किसी सबूत पर आधारित है।"

12. मोनी शंकर बनाम भारत संघ और अन्य में। (2008) 3 एससीसी 484, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया:

"17. विभागीय कार्यवाही अर्धन्यायिक है। यद्यपि साक्ष्य अधिनियम के प्रावधान उक्त कार्यवाही में लागू नहीं होते हैं, प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का अनुपॉलन आवश्यक है। न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग करने वाले न्यायालय इस बात पर विचार करने के हकदार हैं कि क्या किसी दोषी अधिकारी की ओर से कदाचार का अनुमान लगाते समय प्रासंगिक साक्ष्य को ध्यान में रखा गया है और अप्रासंगिक तथ्यों को उसमें से बाहर रखा गया है। तथ्यों का अनुमान उन साक्ष्यों पर आधारित होना चाहिए जो कानूनी सिद्धांतों की आवश्यकताओं को पूरा करते हों। इस प्रकार, ट्रिब्यूनल इस आधार पर अपने निष्कर्ष पर पहुंचने का हकदार था कि

विभाग द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य, भले ही इसे अंकित मूल्य पर पूरी तरह से सही माना जाए, सबूत के बोझ की आवश्यकताओं को पूरा करते हैं, अर्थात्- संभाव्यता की प्रधानता। यदि ऐसे साक्ष्यों पर, आनुपातिकता के सिद्धांत का परीक्षण संतुष्ट नहीं हुआ है, तो ट्रिब्यूनल हस्तक्षेप करने के लिए अपने क्षेत्र में था। हमें रिकॉर्ड में रखना चाहिए कि अनुचितता का सिद्धांत आनुपातिकता के सिद्धांत का मार्ग प्रशस्त कर रहा है।''

13. नरिंदर मोहन आर्य बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य में (सुप्रा), जिस पर दोनों विद्वान वकीलों ने भरोसा किया, इस न्यायालय ने कहाः

''26. हमारी राय में विद्वान एकल न्यायाधीश और परिणामस्वरूप उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने अपने सामने सही प्रश्न नहीं रखा। मामले को दो कोणों से देखा जा सकता है। सीमित क्षेत्राधिकार के बावजूद एक सिविल कोर्ट, ऐसे मामलें में हस्तक्षेप करने का हकदार था जहां जांच अधिकारी की रिपोर्ट बिना किसी सबूत पर आधारित थी किसी दोषी कर्मचारी द्वारा सिविल कोर्ट और रिट कोर्ट में दायर किए गए मुकदमे में, विभागीय कार्यवाही में आए

निष्कर्षों पर सवाल उठाने से पहले उसे निम्नलिखित को ध्यान में रखना चाहिएः (1) जांच अधिकारी को जांच के संचालन के दौरान बाहरी स्रोतों से कोई भी सामग्री एकत्र करने की अनुमति नहीं है। {असम राज्य और अन्य बनाम महेंद्र कुमार दास और अन्य देखें। (1970) 1 एससीसी 709, (2) घरेलू जांच में प्रक्रिया में निष्पक्षता प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों का एक हिस्सा है { देखें खेम चंद बनाम भारत संघ और अन्य। (1958 एससीआर 1080) और उत्तर प्रदेश राज्य बनाम ओम प्रकाश गुप्ता (1969) 3 एससीसी 775,। (3) विवेकाधीन शक्ति के प्रयोग में दो तत्व शामिल होते हैं (1.) वस्तुनिष्ठ और (2.) व्यक्तिपरक और वस्तुनिष्ठ तत्व के प्रयोग का अस्तित्व व्यक्तिपरक तत्व के प्रयोग के लिए एक शर्त है। { केएल त्रिपाठी बनाम स्टेट ऑफ बैंक ऑफ इंडिया और अन्य देखें। (1984) 1 एससीसी 43। (4) प्राकृतिक न्याय के सिद्धांतों के किसी भी कठोर नियम को निर्धारित करना संभव नहीं है जो प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करता है लेकिन कार्रवाई में निष्पक्ष खेल की अवधारणा इसका आधार है। {देखें सवाई सिंह बनाम राजस्थान राज्य (1986) 3 एससीसी 454, (5) जांच अधिकारी को आरोपों से परे जाने की अनुमति नहीं है और

किसी भी निष्कर्ष के आधार पर लगाई गई कोई भी सजा जो आरोपों का विषय नहीं था; पूरी तरह से अवैध। {देखें निदेशक (निरीक्षण एवं गुणवत्ता नियंत्रण) भारतीय निर्यात निरीक्षण परिषद और अन्य बनाम कल्याण कुमार मित्रा और अन्य। 1987 (2) कैल. एलजे 344. (6) } घरेलू पूछताछ में भी संदेह या अनुमान सबूत की जगह नहीं ले सकता। रिट कोर्ट कुछ परिस्थितियों में किसी भी न्यायाधिकरण या प्राधिकारी के तथ्य के निष्कर्षों में हस्तक्षेप करने का हकदार है। {सेंट्रल बैंक ऑफ इंडिया लिमिटेड बनाम प्रकाश चंद जैन (1969) 1 एससीआर 735, कुलदीप सिंह बनाम पुलिस आयुक्त और अन्य देखें। (1999) 2 एससीसी 10,।"

उसमें रेस्पोंडेंट के विरुद्ध पारित निर्णय और डिक्री अंतिम रूप ले चुकी थी।

उक्त मुकदमे में, अनुशासनात्मक कार्यवाही में जांच रिपोर्ट पर विचार किया गया था, इसे बिना किसी सबूत के आधार पर माना गया था। उपरोक्त स्थिति में अपीलकर्ता ने अनुशासनात्मक कार्यवाही की वैधता पर सवाल उठाते हुए एक रिट याचिका दायर की, जिसे खारिज कर दिया गया। इस न्यायालय ने माना कि जब जालसाजी जैसा कोई महत्वपूर्ण निष्कर्ष

ऐसे साक्ष्य पर आता है जो कानून की नजर में मान्य नहीं है, तो सिविल न्यायालय के पास मामले में हस्तक्षेप करने का अधिकार क्षेत्र होगा। इस न्यायालय ने इस बात पर जोर दिया कि यदि रिकॉर्ड पर कुछ सबूत हैं तो जांच अधिकारी किसी निष्कर्ष पर पहुंच सकता है। इसके अलावा यह पाया गया कि अपीलीय प्राधिकारी का आदेश दिमाग का उपयोग न करने से ग्रसित था। इस न्यायालय ने कैप्टन एम. पॉल एंथोनी बनाम भारत गोल्ड माइन्स लिमिटेड में अपने पहले के फैसले का हवाला दिया। {(1999) 3 एससीसी 679, राय देने के लिएः

> "41. हमें यह नहीं समझा जा सकता है कि हमने ऐसा कानून बनाया है कि ऐसी सभी परिस्थितियों में सिविल कोर्ट या आपराधिक अदालत का निर्णय अनुशासनात्मक अधिकारियों पर बाध्यकारी होगा क्योंकि यह न्यायालय बड़ी संख्या में निर्णयों में यही इंगित करता है अन्य कारकों पर भी निर्भर करेगा। उदाहरण के लिए देखें कृष्णकाली टी एस्टेट बनाम अखिल भारतीय चाह मजदूर संघ और अन्य। (2004) 8 एससीसी 200 और प्रबंधक, भारतीय रिजर्व बैंक बैंगलोर बनाम एस मणि और अन्य। (2005) 5 एससीसी 100. इसलिए, प्रत्येक मामले पर उसके अपने तथ्यों के आधार पर विचार करना आवश्यक है।

> 42. यह भी समान रूप से अच्छी तरह से स्थापित है कि न्यायिक समीक्षा की शक्ति का प्रयोग उच्च न्यायालय द्वारा करने से इनकार नहीं किया जाएगा, हालांकि इसके बावजूद ऐसा करना वैध होगा।"

प्रबंधक, भारतीय रिजर्व बैंक बैंगलोर (उपरोक्त) के मामले में इस न्यायालय ने कहाः

> "39. विद्वान न्यायाधिकरण के निष्कर्ष, जैसा कि यहां पहले देखा गया है, पूरी तरह से विकृत हैं। जाहिर तौर पर इसने अपने सामने गलत सवाल उठाए। इसने गलत तरीके से साक्ष्य का दायित्व अपीलकर्ता पर डाल दिया। इसका निर्णय तथ्य की सही खोज पर पहुंचने के उद्देश्य से अप्रासंगिक कारकों पर आधारित है। यह प्रासंगिक कारकों पर विचार करने में भी विफल रहा है। इस प्रकार, न्यायिक समीक्षा का मामला बनता है।"

14. उस मामले में भी, विद्वान एकल न्यायाधीश ने इस आधार पर कार्यवाही की कि एक नियोक्ता का नुकसान यह है कि ऐसे कार्य गोपनीयता में और दुर्घटना से प्रभावित व्यक्ति के साथ साजिश में किए जाते हैं, यह कहते हुए।

"...अनुशासनात्मक कार्यवाही में भी ऐसा कोई निष्कर्ष नहीं निकला है और न ही अपीलकर्ता के खिलाफ कोई आरोप बनता है। उसके पास इस पर अपनी बात कहने का कोई अवसर नहीं था। निस्संदेह, रिट अदालत इसे ध्यान में रखेगी कुछ साक्ष्य या कोई साक्ष्य के बीच का अंतर, लेकिन जो प्रश्न उठाया जाना आवश्यक था और आवश्यक था वह यह होना चाहिए था कि क्या कुछ साक्ष्य पेश किए जाने से दोषी अधिकारी के अपराध के संबंध में निष्कर्ष निकाला जा सकेगा या नहीं। प्रबंधन द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य का आरोपों के साथ संबंध होना चाहिए। जांच अधिकारी अपने निष्कर्षों को केवल परिकल्पना पर आधारित नहीं कर सकता। उसकी ओर से केवल अप्रमाणित कथन साक्ष्य का विकल्प नहीं हो सकता।

45. विद्वान एकल न्यायाधीश के इस आशय के निष्कर्ष कि 'यह न्यायालय के विवेक (एसआईसी) के साथ स्थापित किया गया है, अंततः एक जांच अधिकारी द्वारा उचित रूप से तैयार किया गया है' पूरी तरह से सही नहीं हो सकता है क्योंकि न्यायालय अपनी शक्ति का प्रयोग करते समय न्यायिक समीक्षा की इस बात पर भी ध्यान देना चाहिए कि क्या निष्कर्षों को बनाए रखने के लिए पर्याप्त सामग्री रिकॉर्ड

पर लाई गई थी। अदालत की अंतरात्मा की इसमें ज्यादा भूमिका नहीं हो सकती है। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि विद्वान एकल न्यायाधीश ने अपीलकर्ता द्वारा उठाए गए तर्कों पर बिल्कुल भी ध्यान नहीं दिया। कानूनी सिद्धांतों को लागू करने के उद्देश्य से रिकॉर्ड पर उपलब्ध सामग्रियों पर चर्चा अनिवार्य थी। उच्च न्यायालय की खंडपीठ ने भी यही गलती की।"

15. एक बार फिर एमवी बिजलानी बनाम भारत संघ और अन्य में (2006) 5 एससीसी 88, इस न्यायालय ने कहाः

"...हालांकि विभागीय कार्यवाही में आरोपों को आपराधिक मुकदमे की तरह साबित करने की आवश्यकता नहीं होती है, यानी, सभी उचित संदेहों से परे, हम इस तथ्य को नजरअंदाज नहीं कर सकते हैं कि जांच अधिकारी एक अर्ध-न्यायिक कार्य करता है, जो दस्तावेजों का विश्लेषण करते हुए इस निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि रिकॉर्ड पर मौजूद सामग्रियों के आधार पर आरोपों को साबित करने की संभावना प्रबल थी। ऐसा करते समय, वह किसी भी अप्रासंगिक तथ्य पर विचार नहीं कर सकता। वह प्रासंगिक तथ्यों पर विचार करने से इन्कार नहीं कर सकता। वह

सबूत का भार परिवर्तित नहीं कर सकता है। वह केवल अनुमानों और अटकलों के आधार पर गवाहों की प्रासंगिक गवाही को अस्वीकार नहीं कर सकता। वह उन आरोपों की जांच नहीं कर सकता जिनके लिए अपराधी अधिकारी पर आरोप नहीं लगाए गए थे।''

16. एक बार फिर इस अदालत ने जसबीर सिंह बनाम पंजाब एंड सिंध बैंक और अन्य में। (2007) 1 एससीसी 566,, के मामले में नरिंदर मोहन आर्य बनाम यूनाइटेड इंडिया इंश्योरेंस कंपनी लिमिटेड और अन्य (उपरोक्त) का अनुसरण किया।

''12. इसलिए, इस प्रकृति के मामले में, उच्च न्यायालय को रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्रियों के संदर्भ में मामले के तथ्यों पर मस्तिष्क का प्रयोग करना चाहिए था। वह ऐसा करने में विफल रहा।''

17. इसके अलावा, अनुशासनात्मक प्राधिकारी और अपीलीय प्राधिकारी का आदेश किसी भी कारण से समर्थित नहीं है। चूंकि उनके द्वारा पारित आदेशों के गंभीर नागरिक परिणाम होंगे, इसलिए उचित कारण बताए जाने चाहिए। यदि जांच अधिकारी ने अपीलकर्ता द्वारा की गई स्वीकारोक्ति पर भरोसा किया था, तो कोई कारण नहीं था कि एकसमान साक्ष्य के आधार पर आपराधिक न्यायालय द्वारा पारित आरोपमुक्त करने के

आदेश पर विचार क्यों नहीं किया जाना चाहिए था। अपराध की ओर इशारा करने वाली रिकॉर्ड पर लाई गई सामग्री को साबित करना आवश्यक है। कुछ सबूतों के आधार पर निर्णय लिया जाना चाहिए, जो कानूनी रूप से स्वीकार्य हो। साक्ष्य अधिनियम के प्रावधान विभागीय कार्यवाही में लागू नहीं हो सकते हैं लेकिन प्राकृतिक न्याय के सिद्धांत लागू होते हैं। चूंकि जांच अधिकारी की रिपोर्ट केवल अप्रमाणित कथन और साथ ही अनुमानों और अटकलों पर आधारित थी, इसलिए इसे कायम नहीं रखा जा सकता था। जांच अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष स्पष्ट रूप से किसी भी साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं थे। जैसा कि सर्वविदित है, संदेह कितना भी अधिक क्यों न हो, किसी भी परिस्थिति में कानूनी सबूत का विकल्प नहीं माना जा सकता।

18. उपरोक्त कारणों से, उच्च न्यायालय का निर्णय रद्द किया जाता है। अपील खर्चे सहित स्वीकार की जाती है और अपीलकर्ता को पूर्ण बकाया वेतन के साथ बहाल करने का निर्देश दिया जाता है। वकील की फीस 25,000/- रुपये तय की जाती है।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल '**सुवास**' की सहायता से अनुवादक न्यायिक अधिकारी अटल सिंह चंपावत (आर.जे.एस.) द्वारा किया गया है।

अस्वीकरण: यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और आधिकारिक उद्देश्यों के लिए, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।